सहकारी वन प्रबन्धन की राजनीति

हिमाचल प्रदेश के कांगडा जिला क्षेत्र का एक अनुभव

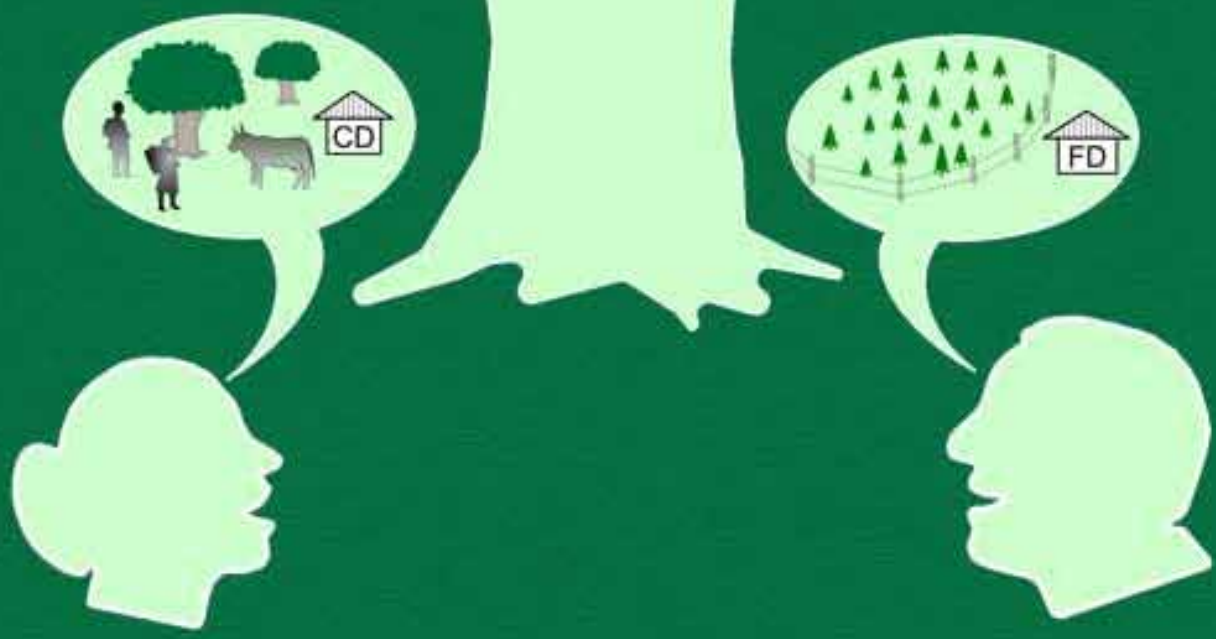

ICIMOD

Talking Points 3/02(H)

सहकारी वन प्रबन्धन की राजनीति

हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिला क्षेत्र का एक अनुभव

राजीव अहल

मार्च 2002
अन्तर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र (इसिमोड)
(काठमान्डू, नेपाल)

This book was originally published in English as '**The Politics of Cooperative Forest Management – The Kangra Experience, Himachal Pradesh**' in 2002, ISBN 92 9115 474 1

© सर्वाधिकार, २००३
अन्तर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र

प्रकाशक
अन्तर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र
पोष्ट बक्स नं. ३२२६
काठमाण्डू, नेपाल

टाईप डिजाइन
धर्मरत्न महर्जन

ISBN 92 9115 801 1

The views and interpretations in this paper are those of the author(s). They are not attributable to the International Centre for Integrated Mountain Development (ICIMOD) or The Mountain Institute (TMI) and do not imply the expression of any opinion concerning the legal status of any country, territory, city or area of its authorities, or concerning the delimitation of its frontiers or boundaries.

हिमालय क्षेत्र में अपने वन संसाधनों के
टिकाऊ प्रबन्धन में जुटे अनगिनत
सामूदायिक वानिकी समूहों
को समर्पित

प्राक्कथन

हिन्दू कुश–हिमालय क्षेत्र के पूरे क्षेत्र में वन एवं अन्य संसाधनों का प्रबन्धन लोक हित के लिए अत्यावश्यक है, क्योंकि जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग इस क्षेत्र में अपने दैनिक जीवन के लिए वनों पर निर्भर है । पहाड़ी क्षेत्र के लोगों के लिए वन संसाधनों का विनाश आने वाले समय में महाविपत्ति का कारण हो सकता है क्योंकि अभी तक बहुत से लोग जलाने की लकड़ी, निर्माण सामग्री, चारा व अन्य उत्पादों के लिए वनों पर आश्रित हैं । स्वस्थ वन संसाधन पहाड़ी क्षेत्रों के पर्यावरण की बेहतरी के लिए नितान्त आवश्यक हैं । बढ़ती हुई भू–विकृति, भू–स्खलन, बाढ़, नदियों के अनुप्रवाह में गाद का भरना, प्राकृतिक आवास का ह्रास, जैव विविधता का ह्रास, जल संसाधनों में कमी और यहां तक कि जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं के लिए वन आवरण का अभाव उत्तरदायी है । वन–संसाधनों का रख–रखाव एक चुनौती बन चुका है, विशेषकर जनसंख्या वृद्धि, बढ़ती हुई आकांक्षाओं और पहुंच के साधनों में विकास से ऐसा हुआ है, क्योंकि इसके साथ निर्यात और अनुचित लाभ उठाने के अवसर बढ़ जाते हैं ।

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू कुश–हिमालय के बहुत से क्षेत्रों में जहां वन संसाधनों को आमतौर पर परिरक्षित किया जाना होता था वहां इन संसाधनों का प्रबन्धन केन्द्र निर्देशित होता रहा और सरकारों ने संरक्षण और नियन्त्रण का काम अपने हाथ में ले लिया हांलाकि इससे सीमित सफलता ही हाथ लगी । हाल ही में वन प्रबन्धन की सोच में भारी बदलाव आया है । इस बात को अब भली प्रकार स्वीकारा गया है कि बढ़िया वन प्रबन्धन को सुनिश्चित करने के लिए उन लोगों को, जो इससे निकट का सम्बन्ध रखते हों अर्थात वनोंत्पादों के उपभोक्ता हों, उन्हें सक्रिय तौर पर सम्मिलित करना आवश्यक है जो निर्णय ले सकें, कार्य संचालन कर सकें और लाभान्वित भी हों । इस क्षेत्र के लगभग सभी देशों में लोक केन्द्रित वन नीतियों का प्रादुर्भाव हुआ है । विभिन्न धारण अधिकार–व्यवस्थाओं और लाभांश वितरण प्रणालियों के माध्यम से किसी न किसी रूप में अधिक से अधिक क्षेत्र को सामुदायिक प्रबन्धन के अन्तर्गत लाया

जा रहा है । इस क्षेत्र के लगभग सभी देशों में सांझा वन प्रबन्धन एक सफल योजना-कौशल के रूप में उभरा है ।

लोक समुदायों की, वन प्रबन्धन में सांझेदारी का प्रथम प्रयास जिला कांगड़ा में किया गया था, जो अब हिमाचल प्रदेश में है - कांगड़ा जिला में वन-सहकारी सभाएं 1940 में अस्तित्व में आई । इस दिशा में किए गए बाद के प्रयासों की तुलना में 1940 के दौरान बनी वन सहकारी सभाएं हर प्रकार के वन क्षेत्र के प्रबन्धन के लिए सक्षम थीं बेशक उन पर मुख्य उत्तरदायित्व उजड़े वन क्षेत्रों को पुर्नजीवित करने का था । आधुनिक नज़रिए के अनुसार वन-सहकारी सभाओं में प्रतिनिधित्व व समतापूर्ण प्रबन्ध की दृष्टि से बड़ी गम्भीर कमियां थी (1940 में यह कोई चिन्ता की बात नहीं थी) फिर भी वे उजड़े वन क्षेत्रों को पुर्नजीवित करने और गांव-समुदायों में स्वामित्व भावना और गर्वानुभूति विकसित करने में सफल रहीं - ये वन सहकारी सभाएं - 1971 में हिमाचल राज्य के पुर्नगठन के समय - उससे सम्बन्धित संगठनात्मक परिवर्तनों तथा वन विभाग की सामुदायिक वानिकी के प्रति उपेक्षा और समुदायों को अपने वनों के प्रबन्धन के बारे में निर्णय लेने की अनुमति देने की अनिच्छा का शिकार हो गई । इन वन सहकारी सभाओं का अस्तित्व - विवादास्पद है - यद्यपि - बहुत सी वैधानिक तौर अनिर्णय की स्थिति मे रहते हुए भी पर कार्य किए जा रही है ।

ऐतिहासिक तौर पर कांगड़ा की वन सहकारी सभाएं सामुदायिक वानिकी का लुभावना सबक सिखाती है जिससे उनके सुचारू रूप से कार्य करने या न कर पाने के कारणों पर प्रकाश पड़ता है -

भूतकाल के विश्लेषण से या इसी क्षेत्र में वन-सहकारी सभाओं के अतिरिक्त किए गए अन्य प्रयासों से तुलना करने पर बहुत सी समस्याएं उजागर हुई हैं यथा -

(क) सरकारी विभागों और उनके कर्मचारियों का रूढ़िवादी रवैया

(ख) समुदायों की प्रतिबद्धता और जनसहभागिता पर अविश्वास

(ग) वन, वन उपभोक्ता, और दूसरे परिभाषिक शब्दों की कानूनी परिभाषा और उनसे पैदा उलझाव ।

(घ) "सामुदायिक वानिकी" के विचार की व्याख्या

(ड) सरकारी वनों के परिरक्षण और पुर्नजीवन में समुदायों का प्रयोग-सरकार के लाभ के लिए

(च) वनों के प्रबन्धन को समुदायों को सौंपना ताकि लम्बी दौड़ में समुदायों की आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित हो सके ।

यह सब और अन्य बहुत कुछ इस दस्तावेज में उपलब्ध है जो निम्न तत्वों पर प्रकाश डालता है यथा:

सामुदायिक वानिकी के इतिहास का विश्लेषण;

उनसे सम्बन्धित राजनैतिक परिस्थितियों का विकास;

कांगड़ा जिला में किए गए अन्य प्रयासों की स्थिति और वर्तमान अवस्था और वन-सहकारी सभाओं का भविष्य । इस दस्तावेज़ में उपलब्ध-विचार व जानकारी न केवल अब हिमाचल प्रदेश में लिए जा रहे वन-प्रबन्धन सम्बन्धी - निर्णयों के लिए उपयोगी है अपितु इस पूरे क्षेत्र के वन-वैज्ञानिकों और वन-नीति-निर्धारकों को अर्न्तदृष्टि भी प्रदान करती है ।

इसीमोड ने अपने प्राकृतिक संसाधन प्रभाग द्वारा पिछले कुछ वर्षों के दौरान हिन्दू-कुश हिमालय के पूरे क्षेत्र के देशों में सामुदायिक वानिकी के प्रसार के लिए सक्रिय रूचि ली है - और सामुदायिक वानिकी के, प्राकृतिक संसाधनों के टिकाऊ-उपयोग व प्रबन्धन के प्रति योगदान को उजागर किया है ।

हमने विभिन्न प्रक्रियाओं सम्बन्धी जानकारी एकत्र करके उसका प्रसार किया है साथ ही इस दिशा में काम करने वाले समूहों को एकत्रित करके विचार-विमर्श हेतु मंच प्रदान किया है ताकि उनकी साझेदारी से सामुदायिक वानिकी की सफलता की ओर योगदान हो सकें । इस प्रक्रिया में यह पुस्तक योगदान की एक और कड़ी है ।

यह विचार-उत्तेजक दस्तावेज़ है और हमें आशा है कि यह सामुदायिक वानिकी पर विचार विमर्श और क्रियान्वयन के लिए मसौदा उपलब्ध कराएगा जिससे सामुदायिक वानिकी को इस समस्त क्षेत्र में सफल बनाने में योगदान प्राप्त होगा ।

- अनुपम भाटिया

लेखक द्वारा प्रस्तावना

इस दस्तावेज में हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिला की वन सहकारी सभाओं के अनुभवों की जांच की गई है । वन सहकारी सभाओं की स्थापना सांझे वन प्रबन्ध के शुरूआती प्रयोग के रूप में 1940 में की गई जो बाद में विवाद का विषय बना और अभी तक बना हुआ है । भूतकाल की प्रक्रियाओं और उपलब्धियों का ऐतिहासिक पुर्ननिरीक्षण वन सहकारी सभाओं और वनों की किस्मों सम्बन्धी मिली जुली जानकारी पर आधारित हैं । इस दस्तावेज में हाल ही में नीति परिवर्तनों का पुर्ननिरीक्षण किया गया है और भविष्य सम्बन्धी विवेचन योग्य विषयों पर चर्चा भी की गई है ।

यद्यपि कांगड़ा की वन सहकारी सभा परियोजना के साथ मेरा सम्बन्ध 1988 में शुरू हुआ पर उन तथ्यों की जांच का काम विस्तार से 1996 में मैंने शुरू किया ताकि उन्हें जनता की जानकारी में लाया जाए । जब इस अध्ययन का कार्य आरम्भ किया गया तो मैंने पाया कि हिमाचल प्रदेश सम्बन्धी लिखित ऐतिहासिक आंकड़े एवं तथ्य विशेषकर कांगड़ा वन सहकारी सभा परियोजना के बारे में बहुत कम उपलब्ध हैं । इससे बढ़कर ये अनुभव हुआ कि कांगड़ा जिला के हिमाचल प्रदेश में शामिल होने के बाद बहुत सी महत्वपूर्ण अधिसूचनाएं, अभिलेख और पत्राचार उपलब्ध न हो सके क्योंकि कांगड़ा जिला को पंजाब राज्य से स्थानान्तरित होकर हिमाचल प्रदेश में शामिल किया गया था। संभवत: कांगड़ा के हिमाचल में स्थानांतरण के दौरान वे कहीं खो गए ।

एक और बाधा यूँ पैदा हुई कि वन विभाग के पास कांगड़ा वन सहकारी सभाओं सम्बन्धी कोई समेकित अभिलेख उपलब्ध नहीं थे । तथापि सहायक पंजीकार (सहकारी सभाएं) के कार्यालय से प्राप्त वन सहकारी सभाओं की पंजीकरण फाइलों में उस सम्बन्धी पत्राचार, निरीक्षण टिप्पणियां, झगड़ों के ब्यौरे उपलब्ध हो सके । इसके अतिरिक्त कुछ वन सहकारी सभाओं ने लकड़ी के सन्दूकों में अपने दस्तावेजों, प्रस्तावों और बैठकों की कार्यवाहियों को एवं पिछले 50 वर्षों के अभिलेखों को भी संभाल कर रखा था । मेरे इस शोध कार्य के लिए ये बहुमूल्य सम्पति सिद्ध हुई । वन सहकारी सभाओं के बहुत से सक्रिय नेताओं के साक्षात्कार द्वारा मौखिक तौर पर ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध

हुई । उपरोक्त स्रोतों के आधार पर मैं वन सहकारी सभाओं सम्बन्धी खाका बना सका और उसका विश्लेषण कर सका हूं ।

अपने अध्ययन के प्रथम पड़ाव तक मैं कांगड़ा में सदियों से प्रचलित वन प्रबन्धन के तरीकों, भूमि काश्तकारी प्रणालियों और उनकी इतिहास सम्बन्धी सोच विकसित कर सका । इसी भूमिका के आधार पर इस खोज की योजना बनी । मैंने इस सम्बन्धी साहित्य का सर्वेक्षण करने के बाद महत्वपूर्ण अधिकृत दस्तावेजों, बन्दोबस्त की रिपोर्टों और इससे पहले छपी पुस्तकों का अध्ययन किया। इसके बाद मैंने जिले का विस्तृत दौरा किया । इससे मैं वन सहकारी सभाओं को विभिन्न वर्गों में बांट सका । मैंने सभाओं के सक्रिय सदस्यों, वन विभाग और सहकारी सभाओं के निम्नस्तरीय कर्मचारियों के बहुत से साक्षात्कार लिए जिससे कांगड़ा वन सहकारी सभाओं के प्रयोग से सामने आने वाले विषयों को पहचाना । तदनन्तर काफी समय उपलब्ध अभिलेखों की जांच करने में लगा। इसी के आधार पर मैं महत्वपूर्ण मामलों और प्रश्नों को प्राथमिकता के आधार पर पहचान कर सभाओं के लिए एक प्रश्नोत्तरी तैयार कर सका । इसी प्रश्नोत्तरी को प्रयोग करते हुए एक दल ने प्रतिनिधि सभाओं का दौरा किया और सभाओं के सदस्यों तथा नेताओं से विस्तार पूर्वक प्राथमिक जानकारी एकत्रित की। इसी जानकारी को लेखबद्ध करने के लिए कोई भी सुझाव प्रस्तुत करने से पहले मैंने सांझे वन प्रबन्धन की एक बड़ी तस्वीर छानबीन के बाद तैयार करने की कोशिश की ।

मेरा उद्देश्य है कि इस दस्तावेज को सादी और गैर तकनीकी भाषा में प्रस्तुत किया जाए ताकि तथ्यों और यथार्थता से समझौता किए बिना इसे जन साधारण और विशेषज्ञों के समक्ष रखा जा सके । मेरी किसी व्यक्ति या संस्था को निन्दित करने की मंशा नहीं है अपितु उन्हें उसी तरह पेश करने की है जैसा कि उन्हें इस सन्दर्भ में मैंने देखा गया है ।

राजीव अहल,
पालमपुर, हिमाचल प्रदेश,
भारत ।

संक्षिप्त कार्यकारी विवरण

इस शोध पत्र में, हिमाचल प्रदेश की वन सहकारी सभाओं और भूतकाल की प्रक्रियाओं और मील पत्थरों (विकास अवस्थाओं) का पुनर्वलोकन करते हुए उनकी पूरी जांच की गई है । वन प्रबन्ध के बारे में पाठकों को समझने की सुविधा के लिए कांगड़ा में प्रचलित बन्दोवस्त और राजस्व पद्धति को भी शामिल किया गया है । जिनके प्रभाव स्वरूप वन सहकारी सभाओं और बाद के सहभागी वन प्रबन्ध (पी.एफ.एम.) जैसे प्रयोग किए गए ।

हिमालय के दूसरे क्षेत्रों की तरह कांगड़ा में लोगों की सामाजिक-आर्थिक नियति और राजनैतिक सामर्थ्य को आकार देने में वनों की मुख्य भूमिका है । वन प्रबन्ध में हुए परिवर्तन, लोगों के वनों के साथ सम्बन्धों को मौलिक रूप से पुनः परिभाषित करते हैं । ब्रिटिश नीतियों ने लोगों की, मुख्य वन क्षेत्रों तक पहुंच को, वनों को एकल प्रजाति के व्यापारिक वनों में परिवर्तित करके, सीमित कर दिया । उसी दौरान सरकार ने पहाड़ों के एक मुख्य व्यवसाय पशुचारण पर रोक लगा दी और इस तरह लोगों को व्यवस्थित कृषि के लिए बाध्य किया गया ।

वन विभाग अपनी राजस्व अभिमुख नीतियों द्वारा की गई भूमिका को समझे बिना, असीमांकित वनों में भूक्षरण व निर्वनीकरण के लिए अनियन्त्रित चरान और अवैध कटान को ही दोषी ठहराता रहा । वन संरक्षण और उसके साथ जुड़ी अपर्याप्त वित्तीय आय सम्बन्धी चिन्ताओं ने नई प्रबन्ध रणनीति को जन्म दिया जिसके अन्तर्गत वन विभाग ने लोगों को वनों के संरक्षण की जिम्मेवारी सौंपना और उन्हें बिक्री से हुई आय का हिस्सा देना आरम्भ कर दिया।

1930-40 के दशक के अन्त में एक आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसरण में पंजाब सरकार ने वन विभाग को ऐसी योजना बनाने के लिए आदेश दिया जिसके अन्तर्गत अपनी वन सम्पदा का, गांव के लोग स्वयं, वन अधिकारियों के मार्गदर्शन तले, प्रबन्ध करने के योग्य बनें। 1940 में के.एफ.सी.एस. योजना औपचारिक रूप से स्वीकृत कर ली गई और इसके साथ 12 वर्ष की अवधि में 72 वन सहकारी सभाओं का गठन किया गया जिन्हें 2800 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के प्रबन्ध की जिम्मेवारी मिली । स्वतन्त्र भारत में, इस योजना को राजनैतिक इच्छाशक्ति का बल मिलना 1956 के बाद घट गया और 1961 में नई सभाओं का गठन न करने के लिए विशेष आदेश जारी किया गया ।

जब कांगड़ा 1971 में हिमाचल प्रदेश का भाग वन गया, वन विभाग ने, के.एफ.सी.एस. द्वारा अपने वनों का प्रबन्ध स्वयं करने के अधिकार के दावों को कानूनी वैधता को मान्यता देने से इन्कार कर दिया । यह आग्रह भी किया गया कि वनों का प्रबन्ध सरकारी कार्ययोजना के अनुसार वन विभाग के कर्मचारियों द्वारा ही किया जाए । परिणामस्वरूप इस योजना की कानूनी स्थिति के बारे भ्रमपूर्ण स्थिति बनी रही जिसकी आगामी परिणति यह हुई कि इस योजना के क्रियान्वयन से जुड़े सब विभागों ने सहभागी वन प्रबन्ध के इस प्रथम प्रयोग से

अपना समर्थन हटा लिया जिसे उन्होंने अभी तक स्वीकारा भी था और बनाए भी रखा था । इस स्थिति के होते हुए भी बहुत सी सभाएं आज दिन तक, कमजोर रूप से ही सही, अपनी कानूनी वैधता को, वन सहकारी सभा के रूप में अपने वर्तमान पंजीकरण पर आधारित करते हुए क्रियाशील रहीं हैं ।

यह प्रकाशन के.एफ.सी.एस. के गठन और प्रचालन सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्तों और नियमों की व्याख्या करता है और इनके क्रियाकलाप का विस्तृत विश्लेषण भी करता है । इसमें, संस्थागत रूप का चयन, सदस्यता और क्षेत्रों के चयन की कसौटी (मापदण्ड) और योजना में वित्तीय प्रणालियों का विकास, इन सब पर चर्चा की गई है । यह दस्तावेज इस बात का संकेत देता है कि इस प्रायोगिक पहल की मौलिक उपलब्धि यह रही है कि अधिकारों और जिम्मेवारियों के सन्तुलन को पुन: परिभाषित करते हुए सामुदायिक नियन्त्रण की व्यवहारिक प्रणालियों को पुन: स्थापित करने का प्रयास हुआ । यद्यपि के.एफ.सी.एस. की अधिसूचनाओं में 'लोगों की सहभागिता' जैसी उक्ति का जिक्र कहीं भी नहीं है, तथापि कार्ययोजना की तैयारी के लिए सभा और गांव वालों से परामर्श करने पर दिए गए बल से प्रतीत होता है कि उसमें पारम्परिक वन संरक्षण से हटकर परामर्श पर आधारित सहभागिता के लिए स्थान रखा गया था।

1940 में लोगों को वन सहकारी सभाओं में संगठित करने वाली सरकार द्वारा प्रवर्तित प्रक्रियाओं के विश्लेषण के महत्व पर लेखक द्वारा बल दिया गया है । लेखक ने यह भी ज्ञात करने की कोशिश की है कि नई संस्थाएं वास्तव में सामुदायिक आधार रखती थी या वन एवं सहकारिता विभाग द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऊपर से थोपी गई सुविधाजनक साधन मात्र थी । लेखक ने यह भी जानना चाहा है कि के.एफ.सी.एस. को सामुदायिक वन प्रबन्ध के रचनातन्त्र के रूप में, गांव के किन समूहों ने स्वीकार किया । उनकी सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि कैसी थी और स्थापित ढांचे कितने सहभागी-मूलक थे ।

के.एफ.सी.एस. ने कांगड़ा में विभिन्न श्रेणियों की भूमि का प्रबन्ध किया, कई प्रकार की वन प्रबन्धन पद्धतियों के तहत कार्य किया । ऐसा लगता है कि इसका मुख्य उद्देश्य वन क्षेत्रों को रकबा बन्दी द्वारा अनियन्त्रित चराई से बचाना था ।

के.एफ.सी.एस. के सदस्यों और प्रबन्ध समितियों का यह कहना कि उन्होंने वनों का प्रबन्ध वन विभाग से बेहतर ढंग से किया, सभाओं के वनों की गुणवत्ता को देखकर सच साबित होता है । अनौपचारिक रूप से वन विभाग के कर्मचारी भी इस बात से सहमति रखते है ।

नि:सन्देह, 1973 से, के.एफ.सी.एस. और वन विभाग के जमीनी स्तर के कर्मचारियों की भूमिकाएं , अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के कार्यक्षेत्र में दखलंदाज़ी पैदा करने वाले हो गए हैं । के.एफ.सी.एस. के वनों की सम्पति को, बिना के.एफ.सी.एस. के सदस्यों को मुआवज़ा दिये ले लिया गया है । के.एफ.सी.एस.के पहल के भविष्य, वर्तमान स्थिति, और भूमिकाओं के विषय में वर्तमान स्थिति भ्रान्तिपूर्ण बनी हुई है, समाधान ढूंढने से पहले, लेखक ने प्रयास किया है कि, सरकार, वनविभाग, सहकारिता विभाग और के.एफ.सी.एस. के रूप

में सभी दावेदारों द्वारा अख्तियार किए गए रुख और भूमिकाओं का विश्लेषण किया जाए ।

इस अध्ययन द्वारा वर्तमान स्थिति का परीक्षण करने का भी प्रयास किया गया है । जिसके अनुसार हि.प्र. सरकार का यह मानना है कि सहभागी वन प्रबन्ध का यह प्रयोग स्थगित-जीवंतता की स्थिति में है हालांकि के.एफ.सी.एस. सक्रिय और जीवित है । अपने साथ हुए व्यवहार के कारण क्रोधित है । खास कर जिस तरीके से एक तरफा कार्यवाही द्वारा राज्य ने उनके अस्तित्व और अधिकारों के आधार को ही निगल लिया है ।

के.एफ.सी.एस. को पुर्नजीवित करने का मुद्दा अपने आप में महत्वपूर्ण है, यह हि.प्र. में सहभागी-टिकाऊ-वन-प्रबन्ध को सुनिश्चित एवं स्थापित करने के लिए सहयोगी वातावरण बनाने के व्यापक संघर्ष का महत्वपूर्ण पक्ष है ।

इस अध्ययन के अन्तिम अध्याय में हिमाचल प्रदेश में "सहभागी वन प्रबन्ध" का हाल का इतिहास, इसके भविष्य को समझने में सुविधा प्रदान करने के लिए दिया गया है । हिमाचल प्रदेश के पी.एफ.एम. नियमों का प्रारूप व वर्ष 1999-2000 में किए गये वन प्रभाग पुनर्वलोकन के साथ साथ अनेक विशेष परियोजनाओं पर चर्चा की गई है । इसका विश्लेषण करते हुए लेखक ने देखा है कि कुछ केन्द्रीय विषय हैं जो सभी सहभागी वन प्रबन्ध प्रयोगों में विद्यमान हैं यथा : अस्थाई या समयबद्ध स्वरूप; रकबे बन्द करना और वनीकरण द्वारा नष्ट प्राय वन क्षेत्रों का संरक्षण व प्रबन्ध करने के लिए गांव स्तरीय अस्थायी संस्थाएं बनाना । गैर वानिकी सम्पदा स्थापित करने और वनीकरण के लिए जिससे अस्थायी तौर पर पास के संरक्षित वनों पर दबाव घटे। परोक्ष रूप से वैतनिक मजदूरी उपलब्ध होने का लाभ प्रदान करना सांझेपन की अवधारणा जिसके अन्तर्गत गांव समितियों द्वारा वन विभाग से अधिक जिम्मेवारी की भूमिका लेना और वास्तविक नियन्त्रण और दीर्घकालिक लाभों को वन विभाग के लिए छोड़ना भी इसका लक्ष्य रहा है ।

इस तरह वन विभाग वर्तमान में पी.एफ.एम. को विदेशी सहायता आर्कषित करने के लिए अथवा नियन्त्रण व पहुंच से वंचित किए जाने से, समुदायों की, उनकों वनों के प्रति विमुखता इसके कारण संचित दबाव को हल्का करने के लिए, मुख्य तौर पर एक साधन के रूप में प्रयोग कर रहा है । इससे लगता है कि वन विभाग ने पी.एफ.एम. द्वारा, वन प्रबन्ध प्रणालियों में प्रमाणित की गई सीखों को अपनी कार्य विधि में समाविष्ट नहीं किया है ।

इस अध्ययन की समाप्ति के.एफ.सी.एस. के भविष्य पर एवं हिमाचल प्रदेश में टिकाऊ वन प्रबन्ध के भविष्य के लिए उभरते सवकों पर चर्चा के साथ की गई है । सहभागी वन प्रबन्ध को मुख्यधारा में लाना, वन भूमि के उपयोग के ढगों में परिवर्तन, वन भूमियों का पुन: वर्गीकरण, व्यक्तिगत अधिकारों को सामुदायिक अधिकारों में बदलना, वन आधारित टिकाऊ जीविकाओं की सशक्त व्याख्या करना, जैसे कई मौलिक परिवर्तन सुझाए गए हैं । के.एफ.सी.एस. की क्रिया-विधि, गांव समुदायों की टिकाऊ ढंग से वनों को पुर्नजीवित व प्रबन्धित करने की क्षमता को ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत आय को उत्पन्न करने और सामाजिक विकास करने की सामर्थ्य को भी प्रमाणित करती है ।

आभार

मैं, मि. एग्बर्ट पैलिंग, भूतपूर्व महानिदेशक (इन्टरनैशनल सैन्टर फॉर इन्टिग्रेटेड माउंटेन डेवलमेंन्ट) (इसीमोड) का इस शोध कार्य को पूरा करने के लिए सहूलियत और सहायता प्रदान करने के लिए धन्यवाद करता हूँ । मैं इसीमोड के सान्झा प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन प्रभाग में समन्वयक श्री अनुपम भाटिया का भी धन्यवाद करता हूँ, जिनका विश्वास रहा कि हिमालय और विशेषकर हिमाचल के विकृतिग्रस्त शिवालिक क्षेत्रों में सान्झी वन व्यवस्था के आड़े आने वाले मामलों को तय करने से पहले कांगड़ा की वन सहकारी सभाओं पर शोध कार्य करना आवश्यक है । उनकी बहुमूल्य अर्न्तदृष्टि, टिप्पणियां व धैर्य मुझे बहुत सहायक रहा । श्री जोगिन्द्र सिंह गुलेरिया के वन सहकारी सभाओं के इतिहास सम्बन्धी गहन जानकारी और उसके पेचीदा कानूनी पहलुओं के ज्ञान से सतत सहायता मिलती रही । उनका उत्साह सदैव अटल व्यवहारिक बल प्रदान करता रहा । मैं विशेषकर धन्यवाद करता हूँ, प्रो. हेन्स विनोल्ड का जिनके सुझाव और विश्लेषण अन्तिम दस्तावेज के केन्द्र बिन्दु को सुस्पष्ट करने में सहायक हुए । मैं श्री पमीन कटोच का भी धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने क्षेत्रीय शोधकार्य की देखरेख की और खोई जानकारियों को खोज निकालने के लिए अनथक कार्य किया । वन, सहकारिता और राजस्व विभागों के कर्मचारियों का भी धन्यवाद करता हूँ जिनसे समय-समय पर सहायता मिलती रही । मैं कांगड़ा की वन सहकारी सभाओं के सदस्यों का और अन्य कईयों का भी धन्यवाद करता हूँ जिनके नाम ज्ञात नहीं और जिन्होंने इस शोधकार्य को पूरा करने में सहयोग दिया है और जानकारियों को प्राप्त करने के लिए की गई पूछताछ में असीम धैर्य दिखाया है । नवरचना के सदस्यों के साथ विचार विमर्श में बहुत बार भ्रमजाल को दूर करने में सहायता मिली है । इस पुस्तक के पहले अंग्रेजी संस्करण का हिन्दी अनुवाद लोक शिक्षण संस्थान द्वारा श्री वीरेन्द्र शर्मा, श्री कुलभूषण उपमन्यु व सुश्री कोमल शर्मा के अथक परिश्रम से हुआ है, जिनका मैं धन्यवाद करता हूँ ।

इस मेहनत को में अपने माता - पिता के चरणों में एक भेंट के रुप में अर्पित करता हूं । अन्त में मैं अपनी पत्नी मन्जू का भी धन्यवाद करना चाहूँगा जिन्होंने विद्वान बनने का प्रयास कर रहे एक क्रियाशील कार्यकर्त्ता, जिसे इस

कार्य का कोई औपचारिक प्रशिक्षण भी न था, और एक ऐसे पति को, जो अक्सर घर सब्जी लाना भूल जाता और बजाए इसके एक अतिरिक्त कागजों का ढेर लेकर घर पहुंचता, को सहर्ष झेला है ।

पाठकों की टिप्पणियों और आलोचनाओं का स्वागत है ।

राजीव अहल

शब्दावली

अन्त्योदय	–	निर्धनों में अति निर्धन
बजरी	–	कंकड़
वन–माफी	–	सन् 1860 में लोगों की भूमि चाय बागान के लिए लेती बार विशेष गांव समुदायों को दी गई रियायतें जिसके अन्तर्गत जिलाधीश की न्यासिता के अधीन मिट्टी और पेड़ों पर गांव वासियों की मलकीयत का प्रावधान था ।
वन–सरकार	–	वन–भूमि जो वन विभाग के नियंत्रण में निहित हो ।
बरतन दार	–	वे लोग जिन्हें पररक्षित वनों पर जो दूसरों के हों, (यथा वन विभाग के हों) उपयोग अधिकार हों ।
करोड़	–	सौ लाख
सीमाङ्कित व संरक्षित वन	–	ऐसे वन जिनमें पेड़ों पर सरकार का अधिकार या बर्तनदारों के अधिकार सुरक्षित थे। मिट्टी पर लोगों का अधिकार सुरक्षित था; उस वन भूमि का कोई अन्य प्रयोग नहीं किया जा सकता हो; और 1/4 से 1/3 भूमि को पुर्नरूत्पादन के लिए बन्द किया जा सकता हो।
देवता कमेटी	–	धार्मिक कमेटी
दरबार	–	लोगों की सभा
गैर मुमकिन	–	काश्त के अयोग्य भूमि
घराट	–	अनाज पीसने के लिए जल–चलित पारम्परिक चक्की
ग्राम पंचायत	–	लोक–स्वायत–प्रशासन के लिए गांव के स्तर पर चयनित–संस्था–जिसे केवल पंचायत भी कहा जाता है ।
खेवट दार	–	वे लोग जो एकमात्र या सान्झे सम्पति अधिकार के आधार पर विशेष अधिकार प्राप्त हो (जैसे सान्झा–सम्पति–संसाधनों पर)
लाख	–	सौ हजार

लम्बरदार	–	गांव में राजस्व एकत्र करने के लिए पारम्परिक कानूनी तौर पर नियुक्त व्यक्ति
महिला मण्डल	–	एक अधिकारिक महिला संस्था, जिसकी सभी गांवों में कमेटियां हों ।
मलकीयत शामलात	–	वह सार्वजनिक भूमि जिसे राजस्व विभाग द्वारा टैक्स लगा दिया गया और निजी भूमि में बदल दिया गया,
मौजा	–	राजस्व विभाग की ऐसी इकाई जिससे कुछ छोटी–2 बस्तियां हों और काश्त योग्य भूमि के टुकड़े हों, बाशिन्दों के आस–पास के बन्जर क्षेत्रों पर अधिकार अपरिभाषित और अलिखित हों, मिट्टी व वन भूमि की मलकीयत बाशिन्दों की सान्झा मलकीयत संस्था को सौंपी गई हो– सारे मौजा का लगान एक मुश्त सरकार द्वारा आंका जाता है और उसकी अदायगी उस संस्था की सान्झी जिम्मेदारी होती है ।
पटवारी	–	गांव स्तर पर राजस्व कर्मचारी
राखा	–	वन–रक्षक
आरिक्षत वन	–	सरकार की संपत्ति जिसे पूर्णाधिकार प्राप्त हो, जिसमें उपभोक्ताओं को उपभोग करने का अधिकार प्राप्त न हो ।
संघर्ष समिति	–	समर्थक–समूह/समिति/संस्था (आरिक्षत वन) पूर्वतः सरकार की मलकीयत, जिसमें वर्तनदारों को कोई अधिकार प्रदत्त नहीं ।
सान्झी वन योजना	–	सहभागी वन प्रबन्धन योजना जो लगभग सान्झा वन प्रबन्धन की तरह ही है – पर इस के लिए वित्तीय प्रबन्ध हिमाचल सरकार द्वारा बजट में प्रावधान करके किया गया है – और यह वर्ष 1998–99 में चालू की गई ।
शामलात टीका	–	मौजा के अन्तर्गत टीका जिसमें सारी भूमि शामलात हों।
शामलात	–	सार्वजनिक भूमि जिस पर बरतनदारों को विविध प्रकार के अधिकार हों ।

तहसील	–	ब्रिटिश हकूमत के अधीन निम्नतम प्रशासनिक इकाई जो कुछ मौजों को मिलाकर बनती है और उसका तहसीलदार प्रशासनिक व राजस्व शीर्ष अधिकारी होता था कुछ तहसीलों को मिलाकर जिला बनता था ।
टीका	–	थोड़े से निवासियों की बस्ती जो गांव या मौजा की संज्ञा पाने अयोग्य हों ।
अवर्गीकृत वन	–	ऐसे वन जिनमें पेड़ों पर सरकार का अधिकार हो और मिट्टी पर लोगों का एवं उसे बिना लोगों की सहमति के बिना बन्द नहीं किया जा सकता ।
सीमाङ्कित संरक्षित वन	–	इनमें लगाए गए और अपने आप पैदा हुए पेड़ों पर सरकार का और मिट्टी पर लोगों का अधिकार होता है उसमे काश्त की आज्ञा जिलाधीश द्वारा दी जाती है अधिकार प्राप्त लोगों की सहमति के बिना बन्द नहीं किया जा सकता । इस प्रकार के वनों में चरान बन्द नहीं किया जाता ।
वन अन्दोलन	–	स्थानीय समुदायों द्वारा, वन सम्बन्धी मामलों में विरोध प्रदर्शन ।
वन–पंचायत	–	वन प्रबन्ध के लिए स्थानीय क्षेत्र की चुनी हुई संस्था ।
वारिसी	–	उपभोग का पैतृक अधिकार जिसे गिरवी रखा जा सकता हो व पुनः प्राप्त किया जा सकता हों ।
वाजिबुल अर्ज	–	गांव का प्रशासनिक अभिलेख जो बन्दोवस्त के दस्तावेज में दर्ज हो
जमींदार	–	भूमिपति किसान जो सरकार को लगान देते हों और तदनुरूप अधिकार मौजा के संसाधनों (यथा–जंगल व सिंचाई के लिए बहते पानी) पर रखते हों ।

संकेताक्षर

ए.आर.	–	असिस्टैन्ट रजिस्ट्रार (सहायक पंजीकार)
बी.एम.	–	वन माफी
सी.डी.	–	को–ऑपरेटिव डिपार्टमैन्ट (सहकारी विभाग)
सी.एफ.	–	कन्सरवेटर ऑफ फारेस्ट (अरण्यपाल)
सी.पी.आर.	–	कामन प्रापर्टी रिसोर्सिस (सार्वजनिक सम्पति)
डी.एफ.आई.डी.	–	डिपार्टमैन्ट फॉर इन्टरनैशनल डिवेल्पमैन्ट (यू के – भूतपूर्व ओ.डी.ए.)
डी.एफ.ओ.	–	डिस्ट्रिक फारेस्ट आफिस/आफिसर (जिला वनाधिकारी या जिला वन कार्यालय)
डी.पी.एफ	–	डिमार्केटिक प्रोटेक्टड फारेस्ट (सीमांकित परिरक्षित वन)
ई.सी.	–	एक्सेक्यूटिव कमेटी (कार्यकारिणी समिति)
एफ.डी.	–	फारेस्ट डिपार्टमैन्ट (वन विभाग)
एफ.एस.आर.	–	फारेस्ट सैक्टर रिव्यू (वन क्षेत्र पुनरावलोकन)
जी.वी.	–	जनरल बॉडी (प्रधान समिति)
जी.ओ.	–	गर्वनमैन्ट आर्डर (सरकारी आदेश)
जी.ओ.आई.	–	गर्वनमैन्ट ऑफ इंडिया (भारत सरकार)
जी.पी.	–	ग्राम पंचायत
जी.टी.जैड.	–	गैशिल शैफ्ट फर टैक्नीशे जुसा मिनारबीट (जर्मन तकनीकी सहकारी)
एच.पी.	–	हिमाचल प्रदेश
एच.पी.एफ.पी.	–	एच.पी. फारेस्ट्री प्रोजेक्ट (हिमाचल प्रदेश वन परियोजना)
जे.एफ.एम.	–	जॉइन्ट फारेस्ट मैनेजमैन्ट (सान्झा वन प्रबन्धन)
आई.जी.सी.पी.	–	इण्डो जर्मन चंगर प्रोजेक्ट (भारत सरकार चंगर परियोजना)
इसीमोड	–	इन्टरनैशनल सैन्टर फॉर इन्टेग्रेटिड माऊन्टेन डिवेल्पमैन्ट (अन्तर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र)
आई.जी.डी.पी.	–	इण्डो जर्मन धौलाधार परियोजना (भारत जर्मन धौलाधार परियोजना)

आई.आर.एम.पी.	–	इन्टेग्रेटिड रिसोर्स मैनेजमैन्ट प्लान (एकीकृत संसाधन प्रबन्ध योजना)
के.एफ.सी.एस.	–	कांगड़ा फारेस्ट को-ऑपरेटिव सोसाइटी (कांगड़ा वन सहकारी सभा)
एम.ऐ.एस.एल.	–	मीटर्स अबव सी लैवल (समुद्र तल से ऊंचाई मीटरों में)
एम.सी.	–	मैनेजमैन्ट कमेटी (प्रबन्ध समिति)
एम.एम.	–	महिला मण्डल
एम.एस.	–	मलकीयत शामलात
एन.जी.ओ.	–	नॉन गर्वनमैन्ट आर्गेनाइजेशन (गैर सरकारी संस्था)
एन.आर.एम.	–	नैचुरल रिसोर्स मैनेजमैन्ट (प्राकृतिक संसाधन प्रबन्ध)
एन.टी.एफ.पी.	–	नॉन टिम्बर फारेस्ट प्रोड्यूस (गैर इमारती वन उत्पादन)
पी.एफ.एम.	–	पार्टीसिपेट्री फारेस्ट मैनेजमैन्ट (सहभागी वन प्रबन्ध)
पी.डब्ल्यू.	–	प्राइवेट वेस्ट लैन्ड (निजी बन्जर भूमि)
आर.एफ.	–	रिजर्वड फारेस्ट (आरक्षित वन)
आर.एस.	–	रूपीज़ (रूपये)
एस.एफ.एम	–	सस्टेनेवल फारेस्ट मैनेजमैन्ट (टिकाऊ वन प्रबन्ध)
एस.वी.वाई.	–	सान्झी वन योजना
टी.डी.	–	टिम्बर डिस्ट्रीब्यूशन (इमारती लकड़ी का वितरण)
ट्रू को.	–	ट्रस्ट एण्ड कॉन्फीडैन्स (भरोसा और विश्वास)
यू.एफ.	–	अनक्लास्ड फारेस्ट (अवर्गीकृत वन)
यू.पी.एफ.	–	अनरिमार्केटिड प्रोटेक्टेड फारेस्ट (असीमांकित परिरक्षित वन)
वी.डी.सी.	–	विलेज डिवेल्पमैन्ट कमेटी (ग्राम विकास समिति)
वी.ई.डी.एस.	–	विलेज इको डिवेल्पमैन्ट सोसाइटी (ग्राम वन विकास समिति)
वी.एफ.डी.एस.	–	विलेज फारेस्ट डिवेल्पमैन्ट सोसाइटी (ग्राम वन विकास सभा)
वी.एल.आई.	–	विलेज लैबल इन्स्टीट्यूशन (ग्राम स्तरीय संस्था)
वी.एल.आर.के.	–	वन लगाओं रोजी कमाओं
डब्ल्यू.पी.	–	वर्किङ्ग प्लान (कार्य योजना)

विषय वस्तु

प्राक्कथन
लेखक द्वारा प्रस्तावना
संक्षिप्त कार्यकारी विवरण
आभार
शब्दावली
संकेताक्षर

1. **जिला कांगड़ा : एक पर्यवलोकन**
   भूमिका
   वन प्रबन्धन की प्रणालियां
   वन संसाधनों की स्थिति
2. **कांगड़ा वन सहकारिता प्रयोग**
   संकल्पना
   कांगड़ा वन सहकारी सभा परियोजना का पर्यवेक्षण
   नीति कार्य प्रणालियां और इतिहास
3. **संस्थागत व्यवस्था**
   वन सहकारी सभाओं के प्रबन्धन सिद्धान्त
   कांगड़ा वन सहकारी सभा परियोजना का प्रवर्तन (आरम्भ)
4. **सहकारी सभाओं का विश्लेषण**
   नीति और उद्देश्य
   संस्थागत विश्लेषण
   वित्तीय व्यवस्थाएं
5. **प्रबन्धकीय दावेदार संस्थाओं के बीच अलगाव प्रवृति**
   राज्य सरकारों की भूमिका
   वन विभाग की भूमिका
   सहकारी विभाग की भूमिका
   कांगड़ा वन सहकारी सभाओं की भूमिका
6. **भविष्य की सम्भावनाएं**
   वर्तमान परिदृश्य
   हिमाचल प्रदेश में सान्झा वन प्रबन्धन का हाल का इतिहास
   चल रही योजनाएं और गतिविधियां
   हिमाचल प्रदेश के सान्झा वन प्रबन्धन के इतिहास से चेतावनियां/सीख

संदर्भिका
परिशिष्ट

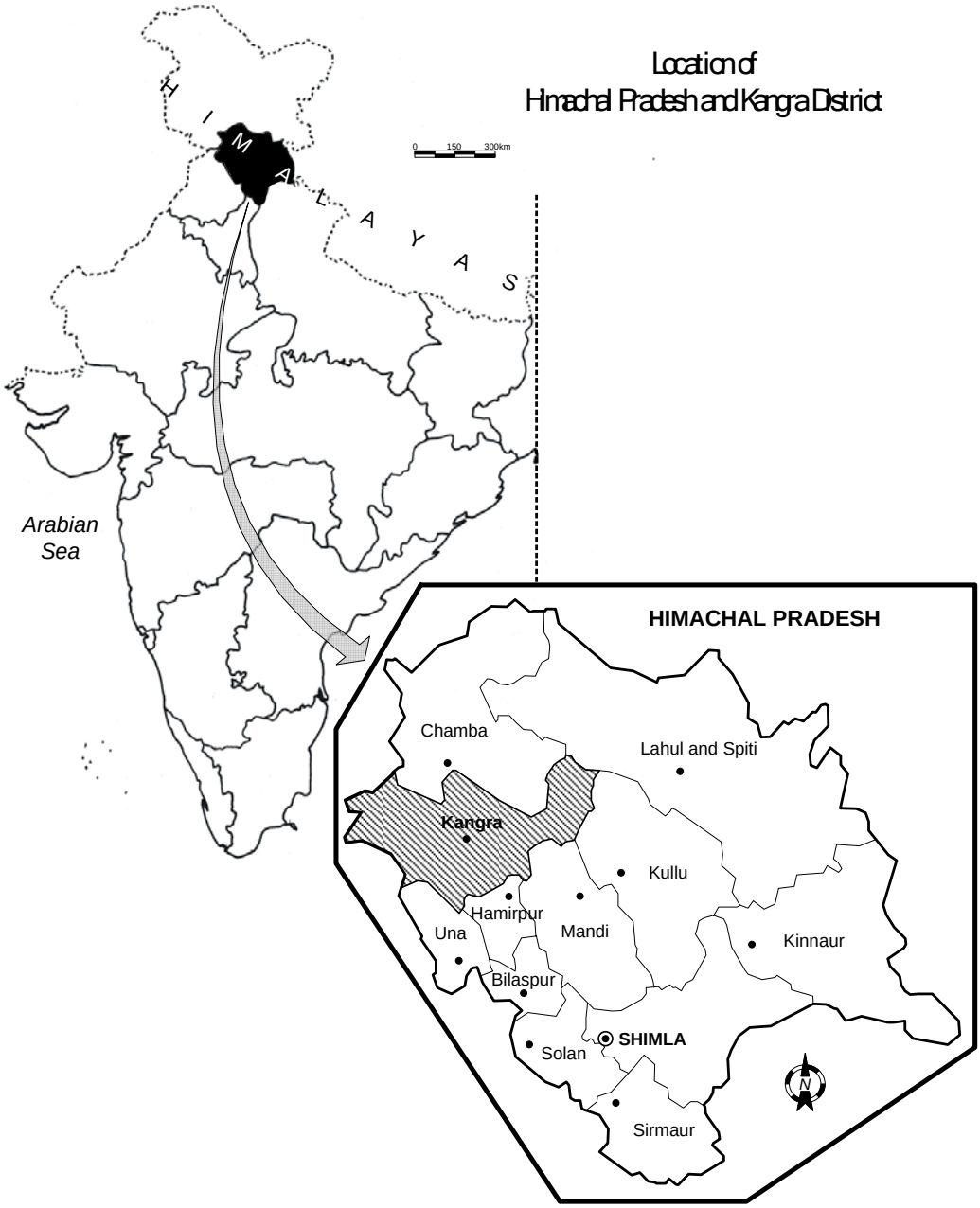
Location of
Himachal Pradesh and Kangra District
0 150 300km
H I M A L A Y A S
Arabian Sea
HIMACHAL PRADESH
Chamba
Lahul and Spiti
Kangra
Kullu
Hamirpur
Mandi
Una
Kinnaur
Bilaspur
SHIMLA
Solan
Sirmaur
N